B.A. III Hons paper-IV/14

आय और व्यय (Income and expenditure

राज्य की समृद्धि और स्थायित्व उसकी आर्थिक स्थिति की सुदृढ़ता पर ही निर्भर है। इस सिद्धांत को प्राचीन भारतीय आचार्य भली-भाँति समझते थे। इसलिए उन्होंने कोष की गणना राज्य के अंगों में की है और आर्थिक दुर्बलता राष्ट्र की महान विपत्ति माना है।

धर्मप्रधान होने के कारण वैदिक वाङ्मय से तत्कालीन राज्यों की आर्थिक व्यवस्था के विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त नहीं होता है। राज्यों के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में राजा की शक्ति अधिक न थी। प्रजाओं द्वारा स्वेच्छा से दी गई कर को प्राप्त होता था, वह राज्य के आर्थिक विकास का सहायक था। किसी भी राज्य को अच्छी तरह से चलाने के लिए कोष की अति-आवश्यकता होती है आर्थिकता के अभाव में राज्य की विकास नहीं हो पाती।

तदोपरान्त, धीरे-धीरे इस स्थिति में परिवर्तन हुआ। परवर्ती वैदिक वाङ्मय में राज्याभिषेक के समय के एक मन्त्र में राजा 'प्रजा का खानेवाला' कहा गया है। इससे स्पष्ट होता है कि लोग राजा को नियमित रूप से कर दिया करते थे और इसी के बल पर राजा अपने कर्मचारियों सहित ठाट-बाट से रहता था।

"भागदुघ" को राजा का भाग वसूल करने वाले के नाम से जाना जाता था और "संगृहीता" कर लाने वाले को कहा जाता था जो इस समय के 'रत्नि' मंडल में भी थे, संभवतः ये दोनों कर विभाग के ही अधिकारी थे। पहले का काम अन्न तथा अन्य उत्पादित सामग्रियों में से राजा के भाग का अंश एकत्र करना था और दूसरे का काम भंडारों और कोषों में संचित रखना था।

आय → राज्य के आय का मुख्य स्रोत कृषि और पशुपालन थे। इन्हीं दो के आधार पर राज्य के कोष की बढ़ोतरी होती थी। कृषक राजा को अपनी फसल का एक भाग राजा को दिया करते थे, जिसका प्रमाण वैदिक ग्रन्थों में भी मिलता है। प्राचीन युग में पशुपालन व्यवस्था पर अधिक बल दिया जाता था तथा इसकी

Scanned with CamScanner

2. काफी महत्व दिया जाता था क्योंकि पशुपालन-आय का मुख्य स्रोत था। पशुपालक गाय, बैल घोड़े इत्यादि का पालन करते थे तथा यही राजा को कर के रूप में देते थे।

प्रजा से "भाग" के ~~अति~~ अतिरिक्त-राजा युद्ध में विजित शत्रुओं या सरदारों से भी दंडपूर्ति या कर प्राप्त करते थे। वैदिक काल में वाणिज्य ~~व्यवसाय~~ व्यवसाय को आर्यों में विशेष प्रतिष्ठा न थी इसलिए इस स्रोत से विशेष आय न थी। खानों पर-राज्य का अधिकार था या नहीं और राज्य द्वारा उनकी खुदाई की जाती थी या नहीं इसका ठीक से पता नहीं चलता।

वैदिक युग के बाद और मौर्यकाल के पूर्व बीच के समय की कर-व्यवस्था के बारे में बहुत कम ज्ञान है। इस युग का विशेष जानकारी जातकों से मिलता है। अर्थशास्त्र, धर्म सूत्रों और स्मृतियों से प्राप्त सामग्री मिलती है जिनकी छानबीन तत्कालीन शिला और ताम्र लेखादि और यूनानी वृत्तलेखकों से विवरण प्राप्त होता है।

राज्य की राजस्व बढ़ाने के लिए विभिन्न चीजों पर कर लगाकर आय का स्रोत बढ़ाया जाता था। जैसे - चुंगी, जकात और नौकाकर के अतिरिक्त वाणिज्य और भी कर भार-वहन करना पड़ता था। कुछ राज्यों में माप-तौलपर की जाँच कर उन्हें मुहर लगाकर प्रमाणित किया जाता जिसके लिए कर देना पड़ता था।

उद्योग-धंधों पर भी कर लगाया जाता था लेकिन यह कर ~~अधिक~~ शारीरिक या महीने में एक या दो दिन सरकार के लिए काम करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त कारीगर कर भी लगता था। इनमें संभवत नाई, धोबी, सोनार और कुम्हार भी शामिल थे।

सुरा व्यापार पर राज्य को कर देना पड़ता था तथा इसपर राज्य का कड़ा नियंत्रण था। सुरा राजकीय सुरालयों में भी बनाई जाती थी। व्यक्तिगत सुरालयों को राजकोष में 5 प्र० श० आबकारी कर देना पड़ता था।

सभी खानें राजकीय सम्पत्ति समझी जाती थी। कुछ तो खान सरकार स्वयं खुदवाती थी और कुछ ठेके पर दे दी जाती थी। ठेकेदार को खान से निकलने वाले

3. द्रव्य पर भारी कर देना पड़ता था। मुक्ता, सोने, और हीरे पर 50 प्र०श०, चांदी और ताँबे पर 33 प्र०श० और अन्य वस्तुओं पर 16 से 25 प्र०श० कर लिया जाता था। इसके अतिरिक्त नमक पर भी आबकारी कर लगाया जाता था। नियमित करों के अतिरिक्त आकस्मिक संकट उपस्थित होने पर या साम्राज्य-विस्तार की योजनाओं के लिए साधन जुटाने के लिए प्रजा से विशेष कर भी लिए जाते थे। महाभारत तो ऐसे अवसर पर भी विशेष कर लगाने के विरुद्ध है पर बड़ी अनिच्छा से कहता है कि कभी-कभी इसके सिवा दूसरा उपाय भी नहीं रहता। ऐसे अवसरों पर विशेष प्रचारक भेजे जायें तो जनता को नये कर का औचित्य समझाकर उसे कर देने के लिए राजी करते। अर्थशास्त्र में इन विशेष करों को "प्रणय" या भेंट का नाम दिया गया है।

राजकीय संपत्ति में राजवस्तु भूमि, ऊसर, जंगल, भूगर्भस्थ धन या निधान, खान, प्राकृतिक सरोवर और जलाशय आदि की गणना की जाती थी और इससे काफी आमदनी होती थी। कृषियोग्य भूमि कृषक की ही होती थी पर उत्तराधिकारी के अभाव, राजकर न देने तथा गुरुतर अपराधों, संपत्तिहरण (Forfeiture) आदि कारणों से राज्य के कब्जे में भी बहुत भूमि आ जाती थी। राजकीय भूमि की देख-रेख का काम एक विशेष कर्मचारी का था जिसे अर्थशास्त्र में सीताध्यक्ष कहा गया है।

साम्राज्य को अपने करद सामंतों के उपायन से भी पर्याप्त आमदनी हो जाती थी। परन्तु इसकी रकम निश्चित न थी और यह तभी तक जारी रहती थी जब-तक करद राजाओं को वश में रखने की शक्ति साम्राज्य में रहती थी।

जुर्माने भी राज्य के आय के मुख्य स्रोत थे। साधारण अपराधों के लिए ग्राम न्यायालयों द्वारा किये गए छोटे-मोटे जुर्मानों की आय तो साधारणतः ग्राम संस्था या मुखिया को ही मिलती थी पर राजकीय न्यायालयों द्वारा किये गए जुर्मानों की रकम राजकोष में ही जाती थी। जुर्माना वसूल करने वाले अधिकारी को "दशापराधिक" कहा जाता था।

व्यय :→ व्यय के सम्बन्ध साक्ष्य का अभाव है।

महाभारत या प्राचीन स्मृतियों में इस सन्दर्भ में अधिक विवरण नहीं मिलता है। उत्तरकालीन स्मृतियाँ उत्कीर्ण लेख और ताम्रपत्र भी इस सन्दर्भ में मौन हैं।

अर्थशास्त्र में इस विषय में कुछ स्पष्टता मिलती है। इसमें व्यय की मदों का विवरण दिया गया है पर ये सब अधिकतर राजमहल के खर्च से संबंध है। शासन के विभिन्न विभागों में होने वाले खर्च का अनुमान नहीं होता। कौटिल्य ने मंत्री, अमात्य और कुछ अन्य अधिकारियों के वेतन का भी विवरण दिया पर राज्य की आय का पता न रहने के कारण हम नहीं जान सकते हैं कि वे वेतन उचित थे या अनुचित। अब भी प्रायः निश्चित है कि प्राचीन भारत में राजकर्मचारियों को अधिकतर नगद वेतन के स्थान पर जागीर या राजकर का अंश ही दिया जाता था।

शुक्र ही एक मात्र ऐसे ग्रंथकार हैं जिनसे यह पता चलता है कि राजा की आय का कितना प्रतिशत किस मद में व्यय होता था। राजा के द्वारा लोकहितकारी कार्यों पर $16\frac{1}{2}$ प्रतिशत खर्च होता था। इसके अतिरिक्त खर्च रास्ते, कुएँ, तालाब, शिक्षण इत्यादि लोकहितकारी कार्यों पर होता था। राजा के निजि खर्च के लिए $8\frac{1}{2}$ प्रतिशत खर्च होता था। सेना पर 5 प्रतिशत खर्च होता था। 500 ई० से साम्राज्य विस्तार का जोर बढ़ा और आये दिन युद्ध होने लगा। अतः अपनी स्वतंत्रता कायम रखने के लिए अत्यधिक खर्च होना निश्चित हो गया।

स्थायी कोष का एक बड़ा हिस्सा किसी गुप्त स्थल में गाड़कर रखा जाता था जिसका ज्ञान बहुत थोड़े विश्वस्त व्यक्तियों को रहता था। एक किंवदंती के अनुसार विजयनगर राज्य संस्थापन करने के समय मंत्री विद्यारण्य ने एक बड़ा खजाना एक गुप्त स्थल में गाड़ दिया था जो भावी संकट के समय में उपयोग के लिए रखा गया था। स्थायी कोष के दूसरे हिस्सों का हिसाब आय-व्यय के साथ किया जाता था और उसके परिणाम का ज्ञान खजाने के अधिकारियों को रहता था।

Scanned with CamScanner